अध्याय : 6

भू–राजस्व व्यवस्था

भू–राजस्व व्यवस्था

भू–राजस्व सदा की भाँति अकबरकाल में आय का प्रधान मार्ग था। इस युग में ग्रामीण समाज उन वस्तुओं की उत्पत्ति करता था जिनकी आवश्यकता क्षेत्रीय लोगों को अधिक थी। डॉ. के.एम.अशरफ का कहना है कि 'मध्ययुग में क्षेत्रीय उत्पत्ति के लिये तरीकों में सुधार करना या समान वितरण की नीति राज्य सरकार की नहीं थी। राज्य का उद्देश्य था कि लोगों का जीवन स्तर रहे और वे आर्थिक संकट में फँसे रहें। यही कारण था कि मुस्लिम शासकों को प्रशासनिक कार्यों में बड़ी सुविधा हुई।'[1]

अपने विशााल साम्राज्य के कुछ भागों पर बाबर ने स्थानीय जमींदारों की सहायता से शासन किया।[2] उसे यह मालूम हो चुका था कि ये जमींदार इस देश की शासन व्यवस्था की आधारशिला हैं। मुगल काल में जमींदार एक अधीन सरदार होता था। उसका केन्द्र द्वारा सीधे शासित प्रदेश में कोई स्थान नहीं था।[3] डॉ. परमात्मा शरण भी इस विचार से सहमत हैं, लेकिन वे यह नहीं मानते कि मुगल साम्राज्य में प्रत्येक स्थान पर जमींदार थे। तथ्यों के विश्लेषण से पता चलता है कि[4] जमींदार केन्द्र द्वारा शासित प्रदेश में भी होते थे। 16वीं और 17वीं शताब्दी के सरकारी कागजात से पता चलता है कि पूरे मुगल साम्राज्य में जमींदार होते थे। आगरा, देहली, पंजाब और अजमेर केन्द्र द्वारा शासित प्रदेश थे। इन प्रान्तों में जमींदार का उल्लेख मिलता है। अकबर द्वारा किया गया राजस्व प्रबन्ध मुगलकाल तक अपरिवर्तनशील रहा।[5]

'जमींदार' का शाब्दिक अर्थ है भूमि पर अधिकार रखने वाला। 14वीं सदी में बर्नी और अफीफ ने जमींदार शब्द का प्रयोग अपने विवरणों में किया है।[6] अबुल फजल ने जमींदार के लिए 'बूमि' शब्द का प्रयोग किया है। परन्तु धीरे–धीरे जमींदार शब्द का प्रयोग अधिक किया जाने लगा। सत्रहवीं सदी जमींदार के लिए तालुका या तालुकादार शब्द का प्रयोग जमींदारी और जमींदार के लिए किया

जाने लगा।[7] जमींदार के लिए 'मलिक' शब्द का भी प्रयोग किया जाने लगा और दस्तावेज में मिल्कियत (मालिक के अधिकार) शब्द को इस्तेमाल किया जाने लगा।[8] जमींदारी गाँव से सम्बन्धित थी न कि खेत से। इसका सम्बन्ध मुगल काल में किसानों से पृथक् ग्रामीण वर्ग से था।[9] सम्पूर्ण मुगल साम्राज्य में 'रैयती' और 'जमींदारी' गाँवों का विभाजन था। दूर के प्रान्त गुजरात में भी भूमि 'रैयती' गाँव और जमींदार के तालुका में बँटी हुई थी।[10] जमींदार अपने गाँव या तालुका की आय, जिसे 'बाँठ' कहते थे, अपने पास रख लेता था और रैयती गाँव की आमदनी राजकोष में जमा करता था। परन्तु कुछ समय बाद जमींदार रैयती गाँव पर भी अतिरिक्त कर (खिराज) लगाने लगे और अपना प्रभुत्व जमाने लगे।[11]

मुगल साम्राज्य में जमींदारी को वंशानुगत बनाने के लिये एक विधान था।[12] मुगल काल जमींदारों की उत्तराधिकार संबंधी समस्याओं को तय करने के लिये हिन्दू और मुस्लिम कानूनों को आधार माना जाता था।[13] जमींदारी अविभाज्य इकाई नहीं समझी जाती थी। ऐसे दृष्टान्त मिले हैं कि जमींदारी का विभाजन कई दावेदारों के बीच किया गया।[14] इस प्रकार जमींदारी के विभाजन से कभी दावेदार को गाँव की भूमि का केवल एक छोटा भाग ही मिल पाता था। जमींदारी के क्रय और विक्रय का सिद्धान्त 18वीं शताब्दी के मुगल राजस्व विभाग के कागजात से पता चलता है। परंतु ऐसा पता चलता है कि यह पद्धति अकबर के समय से प्रारम्भ हुई।[15] कभी जमींदारी पट्टे (इजारा) पर एक निश्चित समय के लिये दूसरों को दे दी जाती थी। पट्टेदार को लगान वसूल करने का पूरा अधिकार मिल जाता था, कभी–कभी अवधि पूरी हो जाने के बाद भी पट्टेदार को किसानों से तकाबी वसूल करने का अधिकार मिल जाता था। जिसे उसने किसानों को दिया था और उसकी वसूली पट्टे को अवधि तक न हो पाई हो।[16]

सत्रहवीं सदी के लेखकों ने इस प्रकार के जमींदारों की सेना के लिए 'उलूस' शब्द का प्रयोग किया है। इसकी उत्पत्ति मंगोलिया और सेण्ट्रल एशिया में हुई।[17] भारत में इसका प्रयोग मुगल सम्राट्टों की केन्द्रीय सेना के लिये नहीं किया गया। इसका प्रयोग जमींदारों की सेना के लिए किया गया, जैसे कछवाहा, राठोर,

गोंड, बलूच का 'उलूस'।[18] मारवाड़ क्षेत्र में कहीं सैंघल राजपूतों के 'वलूस' की जमींदारी थीं।[19] इससे पता चलता है कि अशान्त क्षेत्र के जमींदारों के लिए सेना (उलूस) का रखना आवश्यक था। 'उलूस' शब्द के अत्यधिक प्रयोग से 'उलूस' के अन्तर्गत दूसरी जाति के सिपाहियों की सेना में कोई अन्तर नहीं रह गया। डॉ. इरफान हबीब का कहना है कि 44 लाख जमींदारों के सैनिक, जिसका उलूस आइने अकबरी में किया गया, सभी जमींदारों के जाति के नहीं थे।[20] ऐसा अनुमान किया जाता है कि जमींदारों की सेना में अधिकतर गाँव के लोग (गँवार) होते थे, जिनका प्रयोग जमींदार क्षेत्रीय संघर्षों या अधिकारियों के विरूद्ध करता था।[21]

अकबरकालीन राजस्थान में उसने अपना शासन स्थापित होने के समय देश में अत्यन्त उन्नत और सुदृढ़ वित्तीय पद्धति मिली, जिसे उखाड़ना या नष्ट करना न तो सुगम था और न लाभदायक। न ही वे अपने साथ कोई सुपरचित पद्धति लाये थे, जिसका भारतीय पद्धति के स्थान पर लागू करने से सफलता की आशा की जा सकती थी। फलतः उन्हें देश की ही प्रशासनिक संस्थाओं, विशेषकर राजस्व पद्धति को अपनाना पड़ा। इसके ऊपर उन्होंने केवल कुछ धार्मिक कर और लगा दिए थे। यथा हिन्दुओं से जजिया और मुसलमानों से जरात। उपज और खराज के बीच का जो अंतर फारस और तटवर्ती देशों में था वह भारत में प्रायः मिट गया और मुगल काल में जजिया भी समाप्त कर दिया गया था।[22] हिन्दू शासकों की संस्थाएँ अनेक बातों में विशेषतः भूमि–कर–सम्बन्धी, उनके मुस्लिम उत्तराधिकारियों के प्रबन्ध और तरीकों से' मिलती जुलती हैं। पुनः मध्ययुगीन भारत में विशिष्ट इस्लामी लक्षणों के प्रभाव तथा 'ददशं भूमि' (उशारी) और 'करदभूमि' (खराजी) के विभेद को देखते हुए यह भी स्वीकार करना खतरनाक होगा कि मुस्लिम विजय के कारण स्थानीय पद्धति और लगभग तदनुरुप विजेताओं की पद्धति का समन्वय हुआ होगा।[23]

राजस्व सम्बन्धी मध्ययुगीन भारत के इतिहास में कुछ ऐसे विशेष लक्षण पाते है, जो पूर्वकाल के ही समान थे, यथा भूमि के सर्वेक्षण के तरीके और नकदी राजस्व देने की व्यवस्था, तो हमें उनमें नैमितिक सम्बन्ध को मानने में तनिक भी

संकोच न होना चाहिए।[24] यह निष्कर्ष पूर्व मुस्लिम भारत की राजनीतिक संस्थाओं में कृषि प्रणाली और ग्राम स्वायत्त शासन अधीन पंचायत–प्रणाली के विषय में अधिक सत्य है।

राजस्व पद्धति के कार्य संचालन को सफल बनाने के लिये, अकबर ने उसके प्रत्येक कल्पनीय पक्ष को पूर्णत्व प्रदान करने की चेष्टा की। यह ज्ञात होने पर कि ठेकेदारी प्रथा के अन्तर्गत पैमाइश करने वालों की कम से कम 200 बीघा रबी और 150 बीघा खरीफ में नापने पर 58 दाम मिलते हैं, अतः माप संतोषजनक रीति से नहीं हो पाती, उसने मजदूरी प्रथा कायम की, जिसमें प्रति बीघा एक दाम दिया जाने लगा।[25] बहुत से नियम विरुद्ध महसूल जो स्थानीय रुप में पैदा हो गए थे, बंद कर दिए गए। वस्तुतः उसने यह निश्चित कर दिया कि हर प्रकार के मनमाने कर जैसे–जिहात, सापर जिहात तथा अतिरिक्त वसूली, वजूहात और फरुआत, जो रिवाजों से काम हो गए थे, विधान की दृष्टि में अन्यायपूर्ण और गलत थे बंद कर दिया।[26] 41 उंगल का एक सर्वमान्य गज प्रचलित किया। पुराने जमाने के जरीब व तनाव सन की रस्सी के होते थे जो मौसम के कारण छोटे बड़े होते रहते थे, जिससे पैमाइश सही नहीं हो पाती थी, जिससे लोगों का नुकसान होता था। सम्राट ने इन त्रुटियों को बांस के बने तनाव जारी करके दूर किया, ये लोहे के छल्लों से जुड़े होते थे, और मौसम से प्रभावित नहीं होते थे।[27]

किसानों को हर संभव प्रोत्साहन दिया जाता था, उनमें जो जरुरतमंद और सहायता के योग्य होते थे, उन्हें तकाबी दी जाती थी, जिसे छोटी–छोटी किस्तों में धीरे–धीरे वसूली किया जाता था। नये कूएँ, नहीं खोदी जाती थीं और पुरानी की मरम्मत कराई जाती थी।[28] फसल के नुकसान हो जाने पर किसानों को मालगुजारी में छूट दे दी जाती थी। सरकारी नीति का यह एक लक्षण ही था कि किसानों के हितों की न केवल रक्षा ही की जाय बल्कि उनमें वृद्धि भी की जाय। अमलगुजारों तथा स्थानीय कर्मचारियों को ऐसे आदेश थे कि वह किसानों के मालिक न बनें, बल्कि शुभ चिन्तक बनें।[29] अच्छे नियमों को वास्तव में कहाँ तक माना जाता था यह कहना कठिन है। पर इतना तो था कि अकबर के शासन में

वह विशेषता थी कि जैसे समयानुसार नियम बनाने में परिश्रम किए जाते थे, वैसे ही उन्हें कार्यान्वित करने में प्रयत्न भी किए जाते थे। अकबर अधिकारियों को बिना संकोच गलती करने पर निष्पक्ष रूप से दंडित करने में बड़ी सजगता दिखाता था।[30] कोई ऐसा साधन उपलब्ध नहीं है कि 1605 ई. में अकबर की मृत्यु के पश्चात् साम्राज्य की कुल मालगुजारी का अनुमान लगाया जा सके। सौभाग्य से अबुल फजल ने 1565 ई. में साम्राज्य के प्रत्येक प्रांत की मालगुजारी का विवरण अपनी आईने अकबरी में दिया है, जो कि अकबर के शासनकाल में 1595 ई. में लिखी गई थी। 1595 ई. में अकबर के साम्राज्य की मालगुजारी 51, 483, 00, 009, ½ दाम अथवा रु. 12, 87, 07, 500 9/40 थी।[31] अजमेर सूबे में सरकारों की संख्या 7, महालों की संख्या 197, बीघे में क्षेत्रफल 21435941–6 एवं राजकर 7210039 रुपये रहा।[32]

आइन–ए–दहसाला बन्दोबस्त

आइन–ए–दहसाला बन्दोबस्त लागू होने के पश्चात् मालगुजारी इकट्ठी करने वालों की देखरेख तथा किसानों की देखरेख आदि के लिये टोडरमल ने प्रधानमन्त्री बनते ही यह नियम बनाया कि किसानों से लगान से ज्यादा वसूल करने पर उन्हें जुर्माना देना होगा तथा उनके वेतन से वसूल किया जायेगा। किसानों से जो ज्यादा लिया गया होता वह उनके खाते में डाल दिया जायेगा। हर आमिल के पास अब दो नहीं पहले की तरह एक मुंशी होता था क्योंकि दो मुंशी रहने पर हिसाब किताब ठीक–ठीक नहीं रह पाता था। आमिलों को हर मौसम की फसलों का व्यौरा रखना पड़ता था, जिससे छूट भी दी जा सके।[33] मालगुजारी इकट्ठी करने में गाँव के पटवारियों की मदद लेनी पड़ती थी। जो विवरण दरबार को भेजना पड़ता था उस पर आमिलों के साथ–साथ पटवारी का भी हस्ताक्षर होता था। इस कारण मालगुजारी वसूल करने वालों पर भी अंकुश लग गया।[34]

गज–ए–इलाही

1585 ई. में यह आदेश जारी किया गया कि पूरे साम्राज्य में न भूमि की पैमाइश के लिये बल्कि सब पैमाइशों के लिये गज–ए–इलाही का प्रयोग किया जाना चाहिए। यह गज लम्बाई में लगभग 33 इंच था।[35] इससे एक बीघा का क्षेत्रफल लगभग 10.5 प्रतिशत बढ़ गया। इसके कारण पूरे साम्राज्य में रबी तथा खरीफ दोनों फसलों की दरों में अंतर करना पड़ा।

अन्तिम सुधार

1582 ई. में सारे खालसा प्रदेश को चार मालगुजारी के प्रदेश में विभाजित कर दिया गया और प्रत्येक एक–एक योग्य राजस्व अधिकारी के अंतर्गत रख दिया। वे अधिकारी ये थे–ख्वाजा हामसुद्दीन, ख्वाजा निजामुद्दीन अहमद, रामपतिपुर दास तथा राय रामदास। वे लोग मालगुजारी मन्त्री कुलीज खाँ के अंतर्गत कार्य करते थे।[36] अगस्त 1595 ई. में हर सूबे में एक अलग दीवान नियुक्त किया गया। वह सूबेदार से लगभग स्वतन्त्र होता था और सीधे राजस्व मन्त्री के अंतर्गत कार्य करता था।[37] राजस्व के मामले में अन्तिम सुधार वह था, जिसमें कि राजस्व अधिकारियों और दीवानों को शहजादा सलीम के अधीन कर दिया गया और 1605 में अधिकारियों के मनसबों के आदेशों पर उसकी मुहर लगाई जाने लगी थी।[38]

पहले सब जोती जाने वाली भूमि और कृषि योग्य अनजुती भूमि को भी लगभग 33 इंच लंबे गज–ए–इलाही नामक निश्चित पैमाने से नाप लिया जाता था।[39] फिर चार किस्मों में विभाजित कर लिया जाता था। पोलज, परती, चाचर और बंजर तथा रबी और खरीफ की विभिन्न प्रकार की फसलों के लिये दरें नकदी में और एक सी मालगुजारी के साम्राज्य के एक से प्रदेशों के लिये अलग–अलग दस्तूरों की दरें भी नकदी में निश्चित कर दी जाती थीं। बाजार का भाव चाहे जो कुछ भी हो पर किसान को निश्चित दर से लगान देनी पड़ती थी। पर जुती हुई भूमि, वास्तविक उपज और कीमतों का सालाना विवरण रखे जाते थे।[40] इस कारण से पता चलता था कि किसान को अगले साल उपज के हिसाब से कितनी

लगान देनी है। किसान को एक पट्टा दे दिया जाता था जिससे उसे अपनी भूमि का हिसाब किताब मालूम हो जाता था। पट्टे के हिसाब से किसान आमिल को लगान देते थे तथा साथ रसीद प्राप्त करते थे।[41] किसी कारण फसल नष्ट हो जाने पर सम्राट् द्वारा छूट दी जाती थी। अगर भाव कम हो जाता तो लगान कम कर दी जाती थी अगर बढ़ जाता तो बढ़ा दी जाती थी। क्योंकि सरकारी दरों के स्थान पर बाजार की तत्कालीन वास्तविक दर काम में लाई जाने लगी।[42] राज्य की दर निश्चित करने के दो तरीके थे और किसान उनमें से एक चुन सकता था कनकूत या बटाई, दोनों में ही किसान और राज्य समान रुप से फायदा और नुकसान दोनों का साझीदार होता था। इस कारण लगान में छूट या उसमें वृद्धि का कोई सवाल ही नहीं उठता था।[43]

कनकूत का अर्थ है, किसी खेत की अनुमानित उपज। मालगुजारी का अधिकारी गाँव के मुखिया और कुछ अन्य जानकार लोगों को लेकर खेत का चक्कर लगाता था और उनमें से प्रत्येक अपना–अपना अनुमान लगाते थे। इन्हें छोड़ कर औसत निकाला जाता था और इस औसत का एक तिहाई राज्य की माँग निश्चित कर दी जाती थी।[44] बटाई में फसल काट कर जब भूसा और दाना अलग कर लिया जाता था तब दोनों पक्षों के सामने बाँट दिया जाता था। दूसरी को खेत की बटाई कहते थे, इसमें फसल बोते ही खेत को बाँट लिया जाता था। तीसरी बँटाई को काट बँटाई कहते थे, इसमें कटी फसल को लाँको के ढेर लगा दिए जाते थे। फिर इन ढेरों के तीन बराबर भाग कर एक राज्य को दे दिया जाता था। किसान को यह सुविधा दी जाती थी कि वह चाहे तो प्रचलित भावों पर राज्य के भाग को नकद रकम देकर ले सकता है।[45] इन दोनों में से कोई तरीका अपनाने पर राज्य से सीधे सम्बन्ध किसानों के रहते थे। किसान अपनी भूमि को बेंच सकता था रेहन रख सकता था और चाहे तो उसे उपहार में भी दे सकता था।[46]

नस्क की व्यवस्था एक प्रकार की कार्य प्रणाली थी। इसे जब्त और बटाई व्यवस्था में कभी–कभी किन्तु कनकूत व्यवस्था में सदैव ही काम में लाया जाता

था। जब जाब्ती व्यवस्था के अन्तर्गत भूमि में नस्क प्रणाली प्रयोग की जाती थी तो उस भूमि को नापा नहीं जाता था और पिछले विवरणों पर ही मान लिया जाता था। बटाई व्यवस्था के अन्तर्गत जो भूमि होती थी उसमें नस्क को इस प्रकार लागू किया जाता था कि खेत या फसल अथवा अनाज बिना कोई बँटवारा किये पिछले दरों से राज्य का हिसाब ले लिया जाता था। अकबर उपज का कोई तखमीना न लगाकर प्रत्येक गाँव से कुछ गंलों पर चावल ले लेता था। बिना जमीन का ख्याल किए ही किसानों से हल पीछे ले लिया जाता था।[47]

अबुल फजल के विवरण को आधार मानकर डॉ. परमात्माशरण ने लिखा है कि 'नसक प्रणाली', 'कनकूत' या 'मुकइ' नामक भूमि कर वसूल करने की प्रणाली से पृथक नहीं थी।[48] डा. सरन ने लिखा है कि, 'मुगल शासन काल में सामूहिक कर निर्धारण प्रणाली का अस्तित्व ही नहीं था। डा. हसन के मतानुसार भूमि कर की नसक प्रणाली के अन्तर्गत सरकार का भाग या भूमि कर खेत में खड़ी फसलों से प्राप्त उपज के अनुमान पर निश्चित कर दिया जाता था। सरकारी अधिकारियों और कृषकों में परस्पर समझौते के अनुसार यह कर निश्चित कर लिया जाता था।[49]

अबुल फजल के विवरण को आधार मानकर डा. परमात्माशरण ने लिखा है कि 'नसक प्रणाली' 'कनकूत' या 'मुकइ' नामक भूमि कर वसूल करने की प्रणाली से पृथक नहीं थी।[50] डा. सरन ने लिखा है कि, 'मुगल शासन काल में सामूहिक कर निर्धारण प्रणाली का अस्तित्व ही नहीं था।' डा. हसन के मतानुसार भूमि कर की नसक प्रणाली के अन्तर्गत सरकार का भाग या भूमि कर खेत में खड़ी फसलों से प्राप्त उपज के अनुमान पर निश्चित कर दिया जाता था। सरकारी अधिकारियों और कृषकों में परस्पर समझौते के अनुसार यह कर निश्चित कर लिया जाता था।[51] डा. सरन के मत और विश्वास से प्रो. शर्मा सहमत नहीं है। अलीगढ़ से प्राप्त एक 'दस्तूर–उल–अमल' को प्रमाण उन्होंने लिखा है कि नसक प्रणाली के अन्तर्गत भूमि कर को निश्चित करने के समय न तो खेत में खड़ी फसल की व्यवस्था का विचार किया जाता था और न ही कृषि योग्य भूमि के भेद का, बल्कि

इसके विपरीत पिछले दस से बारह वर्ष तक के भूमि कर के औसत के आधार पर नवीन भूमि कर निश्चित कर लिया जाता था।[52] अतः अनुमान के हिसाब से यह कहा जा सकता है कि कृषकों से वसूल किया जाता था।

अबुल फजल ने लिखा है कि अकबर शेरशाह का अनुशरण कर फसल का एक तिहाई राज्य कर के रुप में लेता था।[53] जाब्ती व्यवस्था के अन्तर्गत वही व्यवस्था प्रचलित थी। वैसे बटाई या कनकूत व्यवस्था में यह दर लागू थी या नहीं। अबुल फजल ने जहाँ कहीं भी कुछ स्थितियों के कारण इस सामान्य तिहाई की दर से अलग कोई दरें लागू की जाती थीं, वहा का उल्लेख विशेष सावधानी पूर्वक किया है। जैसे सम्राट् चावल की दर काश्मीर में आधा कर देता था।[54] जबकि अजमेर के कुछ भागों में फसल का केवल सातवाँ या आठवाँ भाग ही कर के रूप में वसूल करता था। किसान को पैमाइश करने वाले एक दाम प्रति बीघा जाबिताना देना पड़ता था। वह एक दहसेरी नामक कर भी देता था जो कि दस सेर अनाज प्रति बीघा होता था। चाचर और बंजर भूमि पर दहसेरी कर नहीं लगता था और साथ ही कुछ छूटें भी मिल जाती थीं जैसे–कुछ जगहों में ऐक मन अनाज चौथाई सेर और कहीं इससे भी अधिक अनाज उसे फसल रखने के उपलक्ष्य में दे दिया जाता था।[55] गाँव के कारीगरों और अन्य कार्य करनेवालों को जैसे पुजारी, बढ़ई, लुहार, धोबी, नाई, मेहतर आदि को बटाई और कनकूत व्यवस्था में अनाज के पूरे ढेरों में से भुगतान कर दिया जाता था। चाचर भूमि के सम्बन्ध में अमलगुजार को आदेश दे दिया गया था कि अगर ऐसी भूमि पर खेती की जाय तो पहले वर्ष निश्चित मालगुजारी का पाँचवाँ भाग लिया जाय। दूसरे वर्ष 3/5, तीसरे और चौथे वर्ष 4/5 और पाँचवाँ वर्ष से पोलज भूमि की तरह पूरी की पूरी मालगुजारी वसूल की जाय।[56] इसी प्रकार जब वंजर भूमि की खेती की जाय तो निर्देश थे कि किसान से पहले साल प्रति बीघा उपज से केवल एक या दो सेर अनाज लिया जाय। दूसरे वर्ष पाँच से, तीसरे वर्ष उपज का छठवाँ भाग, चौथे साल उपज का चौथाई भाग और एक दाम प्रति वीघा, और पाँचवें साल तथा उसके बाद पूरी पूरी मालगुजारी वसूल किया जाय।[57]

अबुल फजल स्वीकार करता है कि 'सम्पूर्ण हिन्दुस्तान में जहाँ सब कालों में इतने प्रबुद्ध सम्राट् शासन कर चुके हैं उत्पादन का 5 वाँ भाग वसूला जाता था, तुर्की, ईरानी और तूरानी साम्राज्यों में पाँचवाँ, छठवाँ और दसवाँ ग्रहण किया जाता था किन्तु अकबर ने तिहाई की माँग की, अर्थात् भारतीय और ईरानी अनुपात से दुगुना।[58]

हर परगने में एक कलक्टर या अमलगुजार होता था। यह किसानों से सीधी मालगुजारी इकट्ठी करता था। गाँव का मुखिया मालगुजारी वसूली सहायता करता था।[59] किसानों के यहाँ पिछली मालगुजारी बकाया रहती थी तो पहले उसे वसूल किया जाता था। किसानों से और कोई अतिरिक्त भुगतान न कराने शुकराने आदि न लिये जाने के निर्देश थे। अमल गुजार को मालगुजारी वसूली के मासिक विवरण दरबार में भेजने पड़ते थे।[60]

मुगल प्रशासन का अतीव महत्त्वपूर्ण और असाधारण लक्षण था। इन जागीरों में से तो कुछ ऐसी थीं, जो विधान के अनुसार सैनिक विभाग में समझनेवाले सरकारी कर्मचारियों के वेतन के बदले में दी जाती थी। इसके बाद अधिन्यास व्यक्तियों और संस्थाओं को धर्मार्थ दिए गए थे। जागीर का एक निश्चित मूल्यांकन किया जाता था, जागीर को आदेश था कि उचित पावने से अथवा जागीर की सरकारी अनुमानित आय से अधिक वसूल न करें। 27वें इलाही वर्ष में राजा टोडरमल ने राजस्व अधिकारियों के निर्देश के लिये आदेशों और नियमों का परिपत्र भेजा। सम्राट खालसा भूमि के अमल गुजारों और जागीरदारों के नाम आदेश था कि नियम के अनुसार मालगुजारी वसूल करें।[61] यदि किसानों से ज्यादा वसूल किए तो जुर्माना किया जायेगा और फरियादी को रुपया वापस दिलया जायेगा।[62] जब करोड़ियों की नियुक्ति 17वें वर्ष हुई तो जागीरदारों को भी उनकी जागीर में करोड़ियों की नियुक्ति का आदेश दिया गया।[63] इस प्रकार यह स्पष्ट है कि खालसा और जागीरें दोनों भूमियों का कर निर्धारण सरकारी नियमों से होता था। जागीरदार अपनी जागीर में अपने कर्मचारियों से वसूली का कार्य करवाता था।[64]

अजमेर सहित सभी प्रान्तों में केन्द्र के समान बाजार भाव कर दिया और उसी के हिसाब से वसूली की जाती थी। अदायगी के तरीके के विषय में कृषकों की सुविधा और प्रोत्साहन पर विशेष विचार करके उसने उसे नकदी अथवा पैदावार किसी एक रूप में स्वतन्त्रता प्रदान की थी। सम्पूर्ण उपज का एक भाग सरकार का और दो भाग कृषक का, इस नियम के मुताबिक कर लिया जाता था, अर्थात् उपज का कर के रूप में लिया जाता था। इससे अतिरिक्त कृषकों को कुछ और भाग दौरे पर जानेवाले सर्वेक्षकों (पटवारियों) और तहसीलदारों के निर्वाह और शुल्क के रूप में भी देना पड़ता था।[65] अबुल फजल ने लिखा है कि 'जो आज अकबर के समय में कर की व्यवस्था है, वह शेरशाह के भी समय में थी।[66] अबुल कैदी ने अकबर के समय का ⅓ बतलाया है। परन्तु शेरशाह ¼ पैदावार का हिस्सा लेता था।[67] डा. कानूनगो ने आईन–ए–अकबरी के मत को मानने से अस्वीकार कर दिया है तथा ¼ बतलाया है क्योंकि अकबर से भिन्न शेरशाह को बतलाया है। अकबर को इन्होंने ⅓ बतलाया है।[68] क्योंकि मोरलैंड की बात को इन्होंने स्वीकार किया है।[69] मालगुजारी की दर भूमि की औसत उपज पर आधारित थी। भूमि को तीन वर्गों में श्रेष्ठ, मध्यम, खराब में विभाजित कर दिया गया था और तीन प्रकार की औसत उपज निश्चित कर ली जाती थी। अलग–अलग फसलों के लिये अलग–अलग तालिकाएँ होती थीं। शेरशाह के साम्राज्य के जो प्रदेश जब्ती व्यवस्था के अन्तर्गत थे उन सभी में अनाज की मालगुजारी की दरें एक सी ही थीं।[70]

अजमेर सहित प्रत्येक परगने में एक अमीर, एक धार्मिक सिकन्दर, एक खजांची, एक हिन्दी कारकून और एक फारसी लेखक था।[71] उसने अपने सूबेदारों को हुक्म दिया कि जब सारत आए तो भूमिकर, खेतों की नाप के अनुसार लिया जाय। इसके लिये खेतों को नापा जाय। कर उपज के अनुसार लिया जाय। उपज का एक भाग कृषक और आधा भाग मुकद्दम को दिया जाय। कर का निश्चय अन्न की किस्म को देखकर कर लिया जाय, जिससे मुकद्दम, चौधरी और आमिल लोग

किसान पर अत्याचार न करें जो राज्य की संपदा के रक्षक हैं।[72] प्रत्येक परगने में एक कानूनगो की नियुक्ति की थी जिससे परगने की पूर्व, वर्तमान और भावी स्थिति का परिचय मिल सकता था।[73] वसूली की पद्धति गल्ला–वक्सी या अनाज के रुप में ली जाती थी, जो यह कार्य करता था उसे नकद वेतन के रुप में दिया जाता था।[74] इस प्रकार गल्ला वक्सी का नियम सभी सम्राटों के समय में था। इस प्रकार का नियम प्रान्त भी महसूस किए और यही नियम प्रान्तों में भी लागू किया गया।[75] साम्राज्य की आय का मुख्य स्रोत भूमि कर था। समस्त प्रशासन के आर्थिक संगठन का मेरुदंड भूमि कर था। जिस समय अकबर सम्राट् हुआ, तब शेरशाह द्वारा गठित भूमि कर व्यवस्था प्रचलित थी। अकबर इस भूमि कर प्रणाली को अपने शासन के प्रारंभिक पन्द्रह वर्षों तक कायम रखा। इसके बाद उसने भूमिकर व्यवस्था की ओर ध्यान दिया।[76]

अकबर ने शुरु में शेरशाह की अनाज की दरे (रइं) और जमा (मालगुजारी) अपनायी। उस समय दिल्ली, आगरा, इलाहाबाद और अवध ही ऐसे प्रदेश थे, जिवन पर मुगलों का पूर्ण आधिपत्य था। इन प्रदेशों से मांग इन्हों रई और जमा दरों के आधार पर निश्चित की गई। लेकिन वह फसल न हो सकी क्योंकि सभी प्रान्तों की पैदावार में अन्तर था, इस कारण सफलता न मिल सकी। इसलिये यह व्यवस्था असफल सिद्ध हुई।[77] बैरम खाँ को हटाने के बाद अकबर ने ख्वाजा अब्दुल मजीद की 1560 ई. के बीच में ही कभी आसफ खाँ की उपाधि देकर वजीर नियुक्त किया और उसे ही उसने मालगुजारी व्यवस्था को पुनसंगठित करने का भार सौंप दिया।[78] उस समय तक मालगुजारी की रकमें (जमा–ए विलायत) विभिन्न प्रकार के अनाजों (रकमी) में लिखी जाती थी, दामों अथवा रुपयों में नहीं।[79] बैरम खाँ के समय से वही व्यवस्था चली आ रही थी। इस व्यवस्था के आधार पर आसफ खाँ ने मनमानी रूप से जागीरी भूभागों में जो वेतन के बदले में दिए गए थे, कहीं तो मालगुजारी बढ़ा दी और कहीं कम कर दी। आसफ खाँ ने जागीरदारों को सन्तुष्ट करने के लिये उनकी जागीरों का मूल्यांकन अधिक कर दिया। यह बहुत ही अनुचित सिद्ध हुआ और इससे बड़ा असन्तोष फैल गया।

मालगुजारी की वसूली में कोई परिवर्तन नहीं किया, शेरशाह की ही परम्परा को कायम रखा। इस कारण यह प्रथम प्रयोग असफल सिद्ध हुआ।[80]

द्वितीय प्रयोग एतिमादखाँ (मालिक फूल) ने किया था। यह 1561 ई. में खालसा (राज्य के सुरक्षित प्रदेश) का दीवान नियुक्त किया गया था। उसने मालगुजारी व्यवस्था बड़ी ही अस्तव्यस्त पाई। सर्वप्रथम उसने खालसा भूमि को जागीरी भूमि से अलग कर दिया और फिर खालसा भूमि में मालगुजारी वसूली के नये नियम बनाकर उन्हें सितम्बर 1562 ई. से लागू कर दिया। अबुल फजल इनका कोई विवरण न देकर केवल यही कहकर सन्तुष्ट हो जाता है कि इससे गवन समाप्त हो गए।[81] जबकि बदायूँनी लिखता है कि इससे खर्च में बड़ी बचत हो गई।[82] लेकिन यह निश्चित है कि मालगुजारी निश्चित करने का तरीका वही रकमी बना रहा। जिसे विभिन्न प्रकार के अनाज की दरों में दिखाया जाता रहा। इस व्यवस्था को मुजफ्फर खाँ ने 1567 ई. में खत्म कर दिया था।[83]

आईने अकबरी के अनुसार खालसा प्रदेश की एक सी मालगुजारी के बराबर बराबर भागों में बाँटने का प्रयास इसी समय किया गया।[84] प्रत्येक भाग की मालगुजारी एक करोड़ दाम की और प्रत्येक एक करोड़ी नामक अधिकारी को नियुक्त कर दिया गया था। करोड़ी की सहायता के लिये एक वितिक्ची (मुंशी) और एक खजांची रहता था। ये अधिकारी किसानों से सहानुभूतिपूर्ण व्यवहार करते थे और उनसे नकद मालगुजारी वसूल कर रसीद देते थे। यद्यपि अभी तक भूमि की उपज का वास्तविक अंदाज करने का कोई प्रयत्न नहीं किया गया था फिर भी इस कदम से मालगुजारी विभाग में कुछ सुधार अवश्य हुआ। अब एक योग्य और अनुभवी व्यक्ति को केन्द्रीय मालखाने का अध्ययन बना दिया गया और उसकी सहायता के लिये एक मुंशी रख दिए गए।[85] इससे जिन सूबों में अनाज की जो दर थी, उसी हिसाब से वसूल किया जाने लगा। इससे अधिकतर स्थानों में कर कम हो गया, कृषकों की दशा में सुधार हुआ और कृषकों का संतोष बढ़ गया।[86] इसके अतिरिक्त भूमि की नाप का दोष पूर्ववत् रहा।

तृतीय प्रयोग–परगनों के लिये विभिन्न मालगुजारी की दरें – मुजफ्फर खाँ ने अकबर के राज्यकाल के 11वें वर्ष (1567 ई.) में एक तीसरा प्रयोग किया। इससे मालगुजारी व्यवस्था में काफी सुधार हुआ। अभी तक अकबर की मालगुजारी व्यवस्था के आधार पर शेरशाह के काल से चली आ रही फसलों की दरें ही थीं, मुजफ्फर खाँ ने इनके स्थान पर हर परगनों की फसलों के लिये अलग–अलग फसलों की दरों की व्यवस्था की।[87] शासन के पन्द्रहवें वर्ष में (1570–71) अधिक निश्चयात्मक सुधारों की स्थापना हुई, जब मुजफ्फर खाँ तुर्वती ने टोडरमल की सहायता से स्थानीय कानूनगोंओ द्वारा प्रस्तुत और केन्द्र से दस उच्च कानूगोओं[88] द्वारा परीक्षित प्राक्कलनों (आर्थिक अनुमानों) पर आधारित संशोधित भू राजस्व निर्धारण की व्यवस्था की। टोडरमल के मन्त्रित्व काल में इनमें सुधार हुआ। इन विवरणों के आधार पर हर परगने की अलग उपज को ध्यान में रखकर मालगुजारी की नई दरें तय की गयीं। यदि 1571 में कुल मालगुजारी का यह जो अनुमान किया गया वह पहले अधिक ठीक था और 1571 के पूर्व के आंकड़ों से कम था, फिर भी इस नवीन व्यवस्था के अन्तर्गत जो वसूली की गई थी, वह इस अनुमानित कुल मालगुजारी से मेल नहीं खाती थी बल्कि जो कुल मालगुजारी वसूल हो सकी थी, वह अनुमानित मालगुजारी से कम थी।[89] इन सुधारों को अनेक कानूनगोओं ने बड़े परिश्रम से कार्यान्वित किया, और वे 1571 ई. तक कही पूर्ण रुप से लागू किया जा सके। 1569 ई. में अजमेर सहित सभी परगनों की जीती जाने वाली भूमि उसकी उपज और वसूल की जानेवाली मालगुजारी आदि सूचनाएँ मालगुजारी विभाग को प्राप्त हो गई थी। इस कारण शहाबुद्दीन अहमद खाँ को मालगुजारी निश्चित करने की प्रथा को समाप्त करने में आसानी हुई, यह प्रथा मुजफ्फर खाँ ने चलाई थी। शहाबुद्दीन खाँ ने इसकी जगह एक नई व्यवस्था स्थापित कर दी। मालगुजारी विभाग में हर परगने में खेती योग्य भूमि के विवरण और मालगुजारी आंकड़ों से राज्य की माँग निश्चित की जाती थी। इन सुधारों से जागीरों की भूमि सालाना में परिवर्तित हो गई। इस प्रकार का प्रथम परिवर्तन अगस्त सितंबर 1574 ई. में मुनीम खाँ की पहली सूबेदारी में हुआ।[90]

इसके बाद दूसरा सुधार यह किया गया कि राजस्व की दृष्टि से खालसा–भू–भाग को 182 क्षेत्रों में विभाजित किया गया। ये क्षेत्र इस प्रकार से विभाजित किए गए कि प्रत्येक क्षेत्र के भूमि कर से प्राप्त आय एक करोड़ दाम या ढाई लाख रुपए हो। प्रत्येक क्षेत्र को करोड़ी नामक राजस्व के अधिकारी के अधीन कर दिया गया। यह अपने क्षेत्र के गाँवों में भूमि की पैमाइश करवाता था। सिर्फ उस भूमि की पैमाइश करवाता था जो कृषि योग्य थी लेकिन उसपर खेती नहीं होती थी। ऐसी भूमि पर कृषि करने के लिये वह कृषकों को प्रोत्साहित करता था और धीरे–धीरे प्रायः तीन वर्ष में उससे भी भूमि कर वसूल करने लगता था। वह अपने क्षेत्र के कृषकों से भूमि कर वसूल कर राजकोष में जमा करता था तथा अपने क्षेत्र की आय का विवरण तैयार करता था। उस यह आदेश था कि वह कृषकों के हितों में वृद्धि करे और कृषि क्षेत्र को बढ़ाने का प्रयत्न करें।[91]

चौथा प्रयोग – अकबर अभी तक प्रचलित मालगुजारी की निकहम भी व्यवस्थाओं से संतुष्ट न था और वह बराबर इस बारे में सोचता रहता था कि मालगुजारी व्यवस्था में और सुधार किया जाय, वह किसानों के लिये अधिक हितकर और राज्य के लिये संतोष एवं सुविधाजनक बन जाय। इसी कारण अकबर ने सन् 1573–74 में एक चौथा प्रयोग किया। इस प्रयोग में तीन बातें थीं।[92]

(1) खालसा प्रदेश का विस्तार।

(2) जागीरी प्रदेश में आनुपातिक रूप से कमी

(3) भूमि की राज स्वीकृति पैमाने या गज पैमाइश कर उसकी वास्तविक उपज निश्चित करना और उसके आधार पर मालगुजारी तय करना।

इसके पश्चात् एक के बाद एक सूबे खालसा में शामिल होते गए और 1575 तक अधिकांश प्रदेशों को खालसा में परिवर्तित कर दिया गया।[93] अब से जागीरदारी व्यवस्था का शासन और मालगुजारी की वसूली भी जागीरदारों अथवा उनके प्रतिनिधियों के हाथ से निकल गई और केन्द्रीय सरकार द्वारा नियुक्त अधिकारियों के हाथों में आ गई।

अकबर ने लगभग इसी समय भूमि की पैमाइश तथा अन्य पैमाइश सम्बन्धी कार्यों के लिये सिकंदर लोदी के गज को सरकारी पैमाने की इकाई मान लिया। लेकिन जरीब में सुधार किया क्योंकि जिन रस्सियों से अभी तक नपाई की जाती थी वह मौसम के कारण घट बढ़ जाती थी। बांसों के डंडे के पैमाने प्रचलित किए। ये लोहे की कड़ों से एक दूसरे से फँसाए जाते थे। अब जमीन को बीघों में नापा जाने लगा। पहले की तरह बीघा 60 गज लंबा और 60 गज चौड़ा होता था। इसके पहिले मुख्य चार अधिकारी थे–शहबाज खाँ, आसफ खां द्वितीय, राय पुरुषोत्तम और राय रामदास। भूमि के पैमाइश के बाद उपज की निश्चित मालगुजारी होती थी।[94] यह राज्य कर स्थायी कर दिया गया और वार्षिक उपज तथा भाव के कारण साधारणतः इसमें परिवर्तन करने का प्रयत्न ही नहीं रहा। इस व्यवस्था ने समान रुप से कृषकों और जमींदारों की शिकायतों को दूर कर दिया। शिहाब खाँ जब तक प्रान्त का शासन किया था टोडरमल की व्यवस्थापनाओं में सुधार करता रहा।[95]

मालगुजारी निर्धारित करने के लिये भूमि का वर्गीकरण, पोलज, परती, चाचर और बंजर में कर दिया था।[96] अथवा उसकी मिट्टी की किस्म पर आधारित न था। पोलज वह भूमि थी, जिसे हर साल जोता जाता था और जिसे कभी अनजुती नहीं छोड़ा जाता था। परती को शक्ति प्रदान करने के लिये कुछ समय तक बिना जुती ही पड़ी रहने दिया जाता था। चाचर तीन–तीन और चार–चार साल तक अनजती पड़ी रहती थी और बंजर वह भूमि थी जो पाँच साल से अधिक समय तक नहीं जोती जाती थी।[97]

पोलज परती को तीन किस्मों अच्छी, मध्यम और खराब में विभाजित कर दिया गया था।[98] इन तीन किस्मों की प्रति बीघा औसत उपज को पोलज अथवा परती के प्रति बीघा की सामान्य उपज मान लिया जाता था। पोलज और परती में विशेष फर्क न था और परती पर खेती की जाने पर उससे पोलज की दर से ही मालगुजारी वसूल की जाती थी। चाचर और बंजर भूमि जोते जाने पर पांचवें

वर्ष तक लगान में क्रमशः वृद्धि होती थी, जब उनका स्तर वही हो जाता था जो पोलज का होता था। यह मालगुजारी उपज का तीसरा भाग होती थी।

मुगलकालीन राजस्थान में भूराजस्व व्यवस्था अलग–अलग रियासतों में वहाँ के परिस्थिति के अनुकूल विभिन्न प्रकार की थी, क्योंकि कहीं पर पथरीला व रेगिस्तानी भाग, तो कहीं हरे–भरे मैदान, जिससे वहाँ विभिन्नता स्वाभाविक थी।

भू राजस्व व्यवस्था में अनेक दोष थे। भू–राजस्व व्यवस्था में व्याप्त दोषों को समाप्त करने के लिए 1580 ई० में आइन–ए–दहसाला बन्दोबस्त लागू किया गया। अबुल फ़ज़ल के अनुसार अकबर के शासनकाल के 15वें वर्ष से लेकर 24वें वर्ष (1571 से 1580 ई०) तक आँकड़े एकत्र किये गये, जिनसे भूराजस्व की जानकारी प्राप्त हुई। इन दस वर्षों के भूराजस्व एवं मूल्यों को जोड़कर उसे 10 से विभाजित कर प्रतिवर्ष का औसत निकाला गया तथा इसे वार्षिक नक़द भूराजस्व के रूप में स्वीकार किया गया। अबुल फ़ज़ल लिखता है कि इस प्रकार प्रत्येक परगने की पिछले 10 वर्षों की उपज तथा उसके मूल्यों को एकत्रित किया गया और उसके दसवें भाग को भूराजस्व के रूप में स्वीकार किया गया। इस प्रकार अकबर के शासन के 24वें वर्ष तक 'दस्तूरुल अमल' (नियम पुस्तिका) तैयार हो गये, जिसमें प्रत्येक बीघा का नक़दी दर दिया हुआ था, परन्तु प्रो. इरफ़ान हबीब के अनुसार ये दरें अकबर के 24वें वर्ष की नहीं थीं, अपितु 40वें वर्ष की थी।[99] इस बन्दोबस्त में प्रत्येक वर्ष संशोधन किया जाता था तथा दस वर्षों की औसत उपज निकालने के लिए पहले वर्ष की उपज को घटा कर उसके स्थान पर 11वें वर्ष की उपज जोड़ दी जाती थी।[100] सम्भवतः भूराजस्व की नकद धनराशि निश्चित करने के लिए पिछले दस वर्षों में प्रचलित मूल्यों के आधार पर औसत निकाला जाता था, जिसे 'जिन्स–ए–कामिल' कहा जाता था।[101] जहाँ तक राजस्थान के राज्यों का प्रश्न है तो हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि मुगलकाल में ये रियासतें केन्द्रीय शासन के अधीन तो थीं,किन्तु मुगलशासकों ने इनके राज्यों के अंदरूनी मामलों में हस्तक्षेप न करते हुए उन्हें स्वायत्तता प्रदान की थी। मुगलशासक चाहते थे कि राजपूताना राज्य अपने को केन्द्रीय साम्राज्य का

अविभाजित अंग मानते हुए, खराज के रूप में कुछ धनराशि देते रहे, और आवश्यकता पड़ने पर सैनिक सहायता भी करें। राजस्थान के राजपूत राजा अपने राज्य के सर्वेसर्वा थे। अपने सामन्तों व जागीरदारों के माध्यम से शासन का संचालन करते थे।

भू–राजस्व को मध्यकाल में 'हासल' के नाम से भी जाना जाता था। भू–राजस्व या हासल का निर्माण 'भोग' (कृषि कर) एवं 'रोकड़' (अन्य कर) से मिलकर बनता था। **खालसा भूमि** में वसूल की जाने वाली हासल की पूरी रकम राज्य के सरकारी खजाने में जमा होती थी। 'पट्टा' व 'सांसण' के क्षेत्र में 'भोग' जिसे कृषि कर भी कहते थे, पट्टायात व आसामी के पास चला जाता था। 'रोकड़' की रकमों में कर कुछ शासकों व कुछ पट्टायतों को प्राप्त होते थे। मुख्य रूप से भूमि के स्वरूप, फसल की विशेषता एवं काश्तकार की जाति को ध्यान में रखकर भू–राजस्व का निर्धारण किया जाता था। भू–राजस्व के निर्धारण का कोई एक ठोस नियम नहीं बना था। राज्य के भू–राजस्व को निर्धारित करने के लिए पहले से कई तरह की पद्धतियाँ विद्यमान थीं। कहीं–कहीं तो एक ही स्थान (गांव के अन्दर) पर सभी पद्धतियाँ प्रचलित रूप में देखने को मिलती हैं। ये प्रणालियाँ गांव में सामूहिक रूप से भी लागू की जाती थीं तथा इनके अनुसार प्रत्येक काश्तकार से लगान (भू–राजस्व), अलग–अलग भी तय किया जाता था।[102]

भू–राजस्व कर निर्धारण के लिए जब राज्य में लगान हेतु आदेश पत्र भेजा जाता था, तब विभिन्न प्रणालियों से सम्बन्धित काश्तकारों को अलग–अलग प्रणाली के नाम से सम्बोधित किया जाता था। उदाहरणार्थ– पसाइती, मुकाती, बोलिया, हाली, कुंता, हलगत इत्यादि।[103]

राजस्थान में विभिन्न भू–राजस्व पद्धतियों का विकास राज्य की शक्ति के बदलाव के साथ–साथ विकसित हुआ था। सर्वप्रथम राजा का नियंत्रण केवल खालसा भूमि के कर (लगान) तक ही सीमित था। वहां भी वे सीमित दायरे में ही कर वसूल कर पाते थे। उस समय में भी पुराने ग्रामीणों व 'भोमियों' से एक निश्चित रकम ही लगान के रूप में ले पाते थे तथा वह निश्चित रकम 'भोमिये' व

'ग्रासीये' अपने गांव में जोत के आधार पर वितरित करके वसूल करते थे। धीरे–धीरे राजा के कामदारों ने खालसा युक्त गांवों में जाकर भूमि का निरीक्षण करके भू–राजस्व की राशि को (लगान) निर्धारित करना प्रारम्भ कर दिया। राजस्व की प्राप्ति के लिए जो प्रणालियां अपनाई गई थीं, उनमें से प्रत्येक के अपने अलग–अलग आधार थे।

राजस्थान में मध्यकाल से पूर्व ही 'कुंता' प्रणाली का प्रचलन आरम्भ था। सम्भवतः प्रतीत होता है कि जब से प्रशासन का कृषि के साथ प्रत्यक्ष सम्बन्ध स्थापित होने लगा था। इसके अनुसार भू–राजस्व या हासल या 'भोग' (माल) का निर्धारण राज्य का अधिकारी 'कामदार', 'हुवलदार' या एक अन्य अधिकारी 'सहाणा' की सहायता से फसल के उत्पादों को 'आंकता' या 'कूंतता' था। कुल उत्पादन का निर्धारण होने के पश्चात् 'भोग' राज्य के लगान के रूप में उसके 7, 8, 9वें हिस्से के रूप में वसूल किया जाता था।[104]

सत्रहवीं शताब्दी के अन्त तक यह 'भोग' साधारणतया कृषक की भूमि के कुल उत्पादन के 1/5 या 1/6 के रूप में वसूल होने लगा था। कुछ कृषकों से 'तिहालिया' व 'चौथाई' अर्थात् ⅓ व (रूप में यह कर वसूल किया जाता था। यह प्रणाली कृषक की भूमि की उत्पादन शक्ति पर निर्भर करता था। 18वीं शताब्दी के अन्त तक यह भाग 'अधिया' अर्थात्) के रूप में पहुँच गया था, लेकिन इसका पुरजोर विरोध होने के कारण प्रत्येक काश्तकार पर यह दबाव नहीं पड़ा, फलस्वरूप विरोध होने पर इसको समाप्त भी कर दिया गया।[105]

भू–राजस्व प्रणाली के अन्तर्गत 'भोग' के साथ–साथ 'बीजाकर' भी वसूल किया जाता था। यह 'अन्यकर' के अन्तर्गत आता था, जिनमें 'ताली', 'सिराण', 'खूंटा', 'हुजदार', 'ठाकुर जी', 'डेरा खर्च' आदि प्रमुख रूप से थे। इनको खासकर निम्नलिखित कारणों से वसूला जाता था।[106] इसको निम्नांकित तालिका से समझा जा सकता है –

कर	भावार्थ
ताली	तिल पर लगा कर।
सिराण	भू–राजस्व वसूली के अधिकारियों के खान–पान के लिए लगा कर।
खूंटा	भू–राजस्व के अधिकारियों के पशुओं का चराई कर।
हुजदार	अधिकारियों के ताबीनदारों के खान–पान की लागत का कर।
ठाकुर जी	देवी–देवताओं की पूजा आदि के खर्च की लागत का कर।
डेरा खर्च	पड़ाव के खर्च की लागत का कर।

ये सभी कर नक़दी व जिन्स दोनों रूपों में वसूल किये जाते थे। टीलों की भूमि में अन्य कर एक मन जिन्स से अधिक वसूल नहीं होते थे। जबकि समतल व उपजाऊ भूमि में इनका अतिरिक्त दबाव बढ़ जाता था। 'सिराण' कुल उपज का 0.59 प्रतिशत, 'खूंटा' 1.14 प्रतिशत, हुजदार 0.78 प्रतिशत जिन्स के रूप में प्राप्त किया जाता था। ठाकुर जी का 'भोग' एक मन के पैदावार पर एक या दो सेर के रूप में लिया जाता था। 'भोग' को ले जाने के लिए यातायात खर्च के रूप में 10 मन उपज का 2 रुपये 'सूखड़ा' के नाम से वसूल किया जाता था। इसके अतिरिक्त जब 'भोग' को नक़दी में बदला जाता था, तब गाँव का चौधरी और पटवारी भी अपने हिस्से 'काबल' व 'घुगरी' के नाम से प्राप्त करते थे।[107]

17वीं सदी के अन्त तक 'भोग' के अन्तर्गत 'हासल' व 'भाछ' नाम के दो कर और जोड़ दिये गये। अब इस प्रणाली के अन्तर्गत वसूल किया जाने वाला काश्तकार 'हाली' कहलाने लगा। इस कारण समकाल में यह प्रणाली 'हाली हासल' के नाम से भी जानी जाती थी। हासल के रूप में प्रति काश्तकार से प्रति हल का एक रुपया लिया जाता था, जो आगे चलकर 'कच्चे हल' व 'पके हल' में बँटकर क्रमशः तीन व चार रुपये तक वसूल किया जाने लगा था। 'कच्चे हल' का तात्पर्य यहाँ (समकाल) में भूमि को एक बार जोतने से है, जिसे 'इकलीया' भी कहा जाता था। 'पके हल' का तात्पर्य यहाँ भूमि को दो बार जोतने से है, जिसे 'दोलड़ा' भी कहा जाता था। 'हासल' को वसूल करने की दर प्रशासन की तरफ

से घटती व बढ़ती भी रहती थी। यह कर उस समय 'देजहाली' के नाम से भी लिया जाता था। इन उपर्युक्त करों में जब 'रकमें', 'धुआं', 'देशप्रठ', 'कोरड़' आदि जुड़ जाती थीं, तो यह कर पद्धति 'हासल' में 'भाछ' के नाम से वसूल की जाती थी। धुआं प्रति गुवाड़ी एक रुपया पचीस टका तथा 'देसप्रठ' प्रति गुवाड़ी चार आना कर की से वसूल किया जाता था। कई बार इसमें 'अंग भाछ' कर भी जोड़ दिया जाता था। जैसे–

डेढ़ रुपये प्रति बैल (1) रुपये/बैल)
एक रुपये प्रति गाय (1 रुपये/गाय)
पौन चार रुपये प्रति ऊँट (= रुपये/ऊँट)

ये सभी कर सदैव नहीं लागू रहते थे तथा एक साथ भी लागू नहीं किये जाते थे। इनकी दरों में भी थोड़ा बहुत परिवर्तन की सम्भावना रहती थी।[108]

'लाटा' को लटाई अथवा बँटाई के नाम से भी जाना जाता था। लाटा पद्धति भूमिकर को तय करने का सर्वाधिक प्रचलित तरीका था। इस पद्धति के अन्तर्गत प्रत्येक खेत की कुल पैदावार को खलिहान में एकत्रित कर लिया जाता था, फिर सम्पूर्ण पैदावार को तौला या मापा जाता था। कुल तौल अथवा माप के आधार पर ही भूमि कर वसूल किया जाता था।[109] कहीं–कहीं पैदावार के एकत्रित ढेर को तौलने या मापने से पूर्व गाँव के सेवकों का नेग (हिस्सा) अलग करके रख लिया जाता था एवं अन्य जगहों पर पैदावार को तौलने के बाद अन्त में बचे ढेर से गाँव के सेवकों का हिस्सा चुकाया जाता था।[110] इस पद्धति के अर्न्तगत किसान को सबसे अधिक संतोषजनक फायदा यह था कि वह जो फसल तैयार करता था, उसी में से भूमिकर के हिस्से को चुकाना पड़ता था। अधिक पैदावार होने पर अधिक कर एवं कम पैदावार होने पर कम कर चुकाना पड़ता था।[111]

काँकड़–कूँत को 'कंकूँत' पद्धति के नाम से भी जाना जाता है। इस पद्धति और लाटा पद्धति में केवल इतना ही अन्तर है कि इसमें कुल पैदावार को तौलने अथवा मापने का परिश्रम नहीं किया जाता था। 'कंकूँत' प्रणाली के अन्तर्गत कृषकों की कुल पैदावार के ढेर या खेत पर खड़ी फसल (फसल के पक जाने की स्थिति

में) का स्थूल अनुमान लगा कर उसका कर निर्धारण कर लिया जाता था। खालसा क्षेत्र में अनुमान लगाने का काम राज्य के कर्मचारी तथा गाँव के चौधरी मिलकर करते थे। इस पद्धति के अन्तर्गत प्रभावशाली किसान अपनी पैदावार का कम अनुमान लगवाने में कामयाब हो जाते थे।[112]

मुगलों के सम्पर्क में आने से पूर्व राजपूत राज्यों में भूमिकर की वसूली राजकीय अधिकारियों के द्वारा की जाती थी। इस काम में उन्हें गाँव के मुखियों व चौधरियों से सहयोग प्राप्त होता था, परन्तु मुगल सम्पर्क में आने के पश्चात् धीरे–धीरे कर वसूली के लिए इजारेदारी प्रथा का आरम्भ हुआ। राज्य द्वारा एक निश्चित अवधि के लिए एक निश्चित रकम के बदले लगान वसूली का अधिकार किसी को प्रदान करना, इजारेदारी प्रथा कहलाती थी। इसे ठेकेदारी अथवा मुकातेदारी प्रथा भी कहते थे।[113]

समकालीन समाज में सामान्यतः इजारा उस व्यक्ति को दिया जाता था, जो अधिक से अधिक रुपयों की बोली बोलता था। कभी–कभी सम्पूर्ण राज्य में लगान वसूल करने का इजारा भी किसी एक विशिष्ट व्यक्ति को दे दिया जाता था।[114] इससे सामान्यतः प्रतिष्ठित नागरिकों, सेठों अथवा राज्य के अधिकारियों को अधिक लाभ पहुँचता था, क्योंकि योग्य होने पर अधिकांशतः इन्हें भी यही कार्य सौंपा जाता था। इजारे को इजारा की कुल निर्धारित रकम का कुछ भाग राजकोष में अग्रिम रूप से पहले ही जमा करना पड़ता था, फिर वर्ष के अन्त में पूरा हिसाब चुकाना पड़ता था। इस कार्य को करने पर उन्हें निर्धारित रकम में से थोड़ी–बहुत छूट भी दे दी जाती थी।[115] जिन खालसा गांवों को इजारे पर नहीं दिया जाता था, उन गांवों से भूमिकर की वसूली प्रशासन की तरफ से राज्य के कर्मचारी किया करते थे।

मुगलकालीन राजस्थानी समाज में भूमिकर निर्धारित करते समय काश्तकार का स्तर विशेषकर देखा जाता था कि, वह बापीदार किसान है अथवा गैर–बापीदार किसान। इसके निर्धारण के पश्चात् ही उसके पैदावार पर कर की दरें व शर्तें लागू की जाती थीं। इसके साथ–साथ भूमि की किस्म, सिंचाई की

सुविधा, गांव से खेतों की दूरी, फसलों की किस्म और काश्तकार की जाति इन सभी बातों को ध्यान में रखकर ही भूमि कर का निर्धारण होता था।

मुगलकालीन राजस्थान में प्रायः सभी राज्यों में ब्राह्मण, राजपूत, महाजन आदि जातियों से सामान्यतः अन्य की अपेक्षा कम भूमिकर वसूल किया जाता था। इस काल में वंशानुगत कृषि–व्यवसायी जातियों से अधिक भूमिकर लिया जाता था। उदाहरणार्थ– उदयपुर राज्य में कृषि–व्यवसायी जातियों से कुल उपज का एक तिहाई से आधा हिस्सा तक भूमि कर के रूप में लिया जाता था, जबकि यहीं पर राजपूत एवं मीणा वगैरह लड़ाकू जातियों से सामान्यतः कुल पैदावार का एक चौथाई हिस्सा भूमि कर लिया जाता था।[116] इसी राज्य में मैदानी खेतों की सियालू फसल की कुल पैदावार का प्रायः आधा हिस्सा भूमिकर के रूप में लिया जाता था, जबकि उनालू (रबी) फसलों पर सामान्यतः एक तिहाई हिस्सा लिया जाता था।[117]

'मगरा' (पहाड़ी) क्षेत्रों के खेतों की पैदावार से भी समकालीन समय में भू–राजस्व के तहत लगान वसूल किया जाता था, हॉलांकि इन क्षेत्रों का भूमि कर कम था। इन पहाड़ी क्षेत्रों में कुल पैदावार का एक–तिहाई हिस्सा भूमिकर के रूप में लिया जाता था। व्यापारिक फसलों पर भूमि की किस्म के आधार पर नक़द भूमिकर लिया जाता था। इनका भूमिकर इस प्रकार था[118] –

श्रेष्ठ भूमि कर	–	5 रुपये/बीघा
मैदानी भूमि कर	–	2 रुपये/बीघा
मगरा भूमि कर	–	1 रुपये/बीघा

जयपुर राज्य में ब्राह्मणों, राजपूतों, कानूनगो एवं पटवारियों आदि से सामान्यतः कुल पैदावार का 1/5वाँ हिस्सा ही भूमिकर के रूप में लिया जाता था। कृषि–व्यवसायी जातियों से 1/5वाँ हिस्सा से लेकर ½ हिस्सा तक वसूल किया जाता था।[119] व्यापारिक फसलों पर ब्राह्मणों एवं राजपूतों आदि से 3 रुपये प्रति बीघा से लेकर 5 रुपये प्रति बीघा तक वसूल किया जाता था, जबकि अन्य लोगों से अफीम तथा गन्ने की फसल पर 7 रुपये प्रति बीघा, तम्बाकू पर 5 रुपये

प्रति बीघा, कपास पर 4 रुपये प्रति बीघा एवं मक्के पर 2 रुपये प्रति बीघा के हिसाब से भूमिकर लिया जाता था।

जोधपुर राज्य में बापीदार किसानों से गैर–बापीदार किसानों की तुलना में बीस प्रतिशत कम राजस्व लिया जाता था।[120] पीवल भूमि की उनालू फसलों के लिए ब्राह्मण, राजपूत, महाजन आदि इन जातियों से राजस्व कम वसूल किया जाता था। इन जातियों से कुल पैदावार का 1/6 हिस्से से लेकर ¼ हिस्से तक लिया जाता था। समकाल में कृषि–व्यवसायी कृषकों से अधिक राजस्व वसूला जाता था। इनको यह कर कुल पैदावार का एक चौथाई से लेकर एक–तिहाई हिस्सा तक देकर भूमि कर चुकाना पड़ता था। सिंचाई के साधन के नजदीक तालाबों व बांधों की तलहटियों में पैदा होने वाली उनालू फसलों पर ब्राह्मण, राजपूत, महाजन आदि से 1/5 हिस्सा भूमिकर के रूप में लिया जाता था, जबकि अन्य जातियों से एक चौथाई□(¼) हिस्सा लिया जाता था। सियालू फसलों पर ब्राह्मण, राजपूत, महाजन आदि जातियों से 1/5वें हिस्से से लेकर ¼ हिस्से तक लिया जाता था और अन्य जातियों से इन फसलों पर भी एक तिहाई से लेकर आधे हिस्से तक कर वसूल किया जाता था।[121]

राजस्थान के कोटा राज्य में जालिम सिंह के पूर्व कुल उपज के 1/5 वें भाग से लेकर ½ हिस्से तक भूमि कर लिया जाता था।[122] कोटा में राजराणा जालिम सिंह ने अपने समय में भूमि की पैमाइश करवाकर, भूमि की किस्मों को आधार बनाकर प्रति बीघा के हिसाब से नकद भूमिकर वसूल करने की नीति लागू की थी।

अतः इन आंकड़ों के आधार पर यह प्राप्त होता है कि मध्यकालीन राजपूत राज्यों में सियालू और उनालू फसलों के भूमिकर में अन्तर विद्यमान था। खाद्यान्न एवं व्यापारिक दृष्टिकोण से उपज हुई फसलों के करों में भी अन्तर था। तत्कालीन समय में सभी जातियों से एक समान कर न लेना भी एक अनियमितता थी। भूमिकर जिन्स और नक़द दोनों रूपों में लिया जाता था। हालांकि इससे किसानों को कोई विशेष कठिनाई नहीं महसूस होती थी।[123]

सन्दर्भ :

1 के.एम. अशरफ, लाइफ एण्ड कंडीशंस ऑफ दि पीपुल ऑफ हिन्दुस्तान, पृ. 85–86.

2 बाबरनामा, (अनु.), भाग 2, पृ. 520; रिजवी, मुगलकालीन भारत (बाबर), पृ. 200.

3 मोरलैण्ड, एग्रेरियन सिस्टम, पृ. 122, 279.

4 पी. सरन, दि प्रार्विशियल गवर्नमेण्ट अण्डर दि मुगल्स, पृ. 111.

5 स्मिथ, अकबर दि ग्रेट मुगल, पृ. 306–307.

6 देखिये – मोरलैण्ड, एग्रेरियन सिस्टम, पृ. 18.

7 इरफान हबीब, दि एग्रेरियन सिस्टम ऑफ मुगल इण्डिया, बम्बई, 1963, पृ. 139.

8 इरफान हबीब, दि एग्रेरियन सिस्टम ऑफ मुगल इण्डिया, बम्बई, पृ. 139.

9 इरफान हबीब, दि एग्रेरियन सिस्टम ऑफ मुगल इण्डिया, बम्बई, पृ. 141.

10 इरफान हबीब, दि एग्रेरियन सिस्टम ऑफ मुगल इण्डिया, बम्बई, पृ. 142.

11 इरफान हबीब, दि एग्रेरियन सिस्टम ऑफ मुगल इण्डिया, बम्बई, पृ. 143.

12 इरफान हबीब, दि एग्रेरियन सिस्टम ऑफ मुगल इण्डिया, बम्बई, पृ. 154.

13 इरफान हबीब, दि एग्रेरियन सिस्टम ऑफ मुगल इण्डिया, बम्बई, पृ. 155.

14 दुर्रअलउलूम, फोलियो 431–441; उद्धृत, इरफान हबीब, दि एग्रेरियन सिस्टम ऑफ मुगल इण्डिया, बम्बई, 1963, पृ. 155.

15 इरफान हबीब, दि एग्रेरियन सिस्टम ऑफ मुगल इण्डिया, बम्बई, 1963, पृ. 157–58.

16 इरफान हबीब, दि एग्रेरियन सिस्टम ऑफ मुगल इण्डिया, बम्बई, पृ. 159.

17 देखिये वी.क्यू.सुन, दि सीक्रेट हिस्ट्री ऑफ दि मंगोल डायनेस्टी, अलीगढ़, 1957, पृ. 13–14, 16–17.

18 अकबरनामा, जिल्द 2, पृ. 156; आइने अकबरी, जिल्द 1, पृ. 411, 486.

19 इरफान हबीब, दि एग्रेरियन सिस्टम ऑफ मुगल इण्डिया, बम्बई, पृ. 166.

20 इरफान हबीब, दि एग्रेरियन सिस्टम ऑफ मुगल इण्डिया, बम्बई, पृ. 166.

21 बदायूँनी, जिल्द 2, पृ. 151.

22 आईन, 1, पृ. 279.80, गैरेट, 2, पृ. 47–48.

23 मोरलैंड, अग्रेरियन सिस्टम, पृ. 16.

24 हिन्दू रेवेन्यू सिस्टम, पु. 287.

25 आईन, 1, पृ. 301.

26 आईन, 1, पृ. 294, 2, पृ. 17–19.

27 अकबरनामा, 2, पृ. 167.

28 जर्नल आफ ऐ. सो. आफ ब.जि. 15 (1846), पृ. 214–15.

29 स्मिथ, पृ. 376–77, मोरलैंड, पृ. 111–13.

30 स्मिथ, पृ. 376–77, मोरलैंड, पृ. 111–13.

31 1580 ई. में आईने अकबरी (भाग 1, पृ. 385) के अनुसार कुल मालगुजारी 3, 62, 97, 55, 246 दाम थी। निजामुद्दीन अहमद के अनुसार 1993–94 में जो राशि प्राप्त हुई थी, वह 4, 40, 06, 00,000 (तबकाते अकबरी, 3, पृ. 546) थी। आईन, 1, पृ. 285, तबकाते अकबरी, 3, पृ. 546.

32 शेषमणि त्रिपाठी, अकबर की राज्य व्यवस्था, प्रयाग, सं. 2007, पृ. 81.

33 आईन, 2, पृ. 95–96.

34 मोरलैण्ड, एग्रेरियन सिस्टम, पृ. 88.

35 अकबरनामा, 2, पृ. 529.

36 अकबरनामा, 3, पृ. 839.

37 अकबरनामा, 3, पृ. 839.

38 आईन, 1, पृ. 296.

39 आईन, 1, पृ. 269.

40 मोरलैण्ड, एग्रेरियन सिस्टम, 118–22, श्रीराम शर्मा 76–82, स्मिथ, 20–21.

41 आईन, 1, पृ. 300–301.

42 अकबरनामा, 3, पृ. 60.

43 अकबरनामा, 3, पृ. 63–64.

44 श्रीराम शर्मा, मुगल एम्पायर इन इण्डिया, पृ. 85–87.

45 आईन, 2, पृ. 47.

46 मोरलैण्ड, एग्रेरियन सिस्टम, पृ. 125.

47 अकबरनामा, 2, पृ. 333, भाग 3, पृ. 381–82, 548, आईन, 1, पृ. 285, 86, 87, 389, 485, 487, हरफान हबीब, पृ. 215–19.

48 पी. सरन, दि प्रार्विशियल गवर्नमेण्ट अण्डर दि मुगल्स, पृ. 290.

49 पी. सरन, दि प्रार्विशियल गवर्नमेण्ट अण्डर दि मुगल्स, पृ. 71.

50 पी. सरन, दि प्रार्विशियल गवर्नमेण्ट अण्डर दि मुगल्स, पृ. 71.

51 पी. सरन, दि प्रार्विशियल गवर्नमेण्ट अण्डर दि मुगल्स, पृ. 71.

52 श्रीराम शर्मा, मुगल गवर्नमेण्ट एण्ड एडमिनिस्ट्रेशन, पृ. 92–93.

53 आईन, 2, पृ. 366.

54 आईन, 2, पृ. 366.

55 आईन, 2, पृ. 71.

56 आईन, 2, पृ. 73.

57 आईन, 2, पृ. 75.

58 आईन, पृ. 55, 267, 336, अकबरनामा, 2, पृ. 643, 749.

59 आईन, 2, पृ. 285.

60 आईन, 2, पृ. 285.

61 अकबरनामा, 3, पृ. 372.

62 अकबरनामा, 3; पृ. 381, अनुवाद 561.

63 तबकाते–अकबरी, इलियट एण्ड डाउसन, हिस्ट्री ऑफ इण्डिया ऐज टोल्ड बाइ इट्स ओन हिस्टोरियन्स, 4, पृ. 383.

64 आईन, 2, पृ. 358–359, अकबरनामा, 3, 732.

65 शेरशाह की राजस्व पद्धति (कानूनगो), जर्नल आफ, बिहार एण्ड उड़ीसा रिसर्च सोसाइटी, पटना खण्ड 17, भाग 1, 1930–31.

66 आइने, 1 (अनु.), पृ. 298–99.

67 आइने, 1 पृ. 294.

68 मोरलैण्ड, एग्रेरियन सिस्टम, पृ. 452–53.

69 अलीजुल्फीकार, शेरशाह सूरी, पृ. 373–74, आईने, 2, पृ. 63–66.

70 आईने, 1, पृ. 297.

71 कालीरंजन कानूनगो, शेरशाह एण्ड हिज टाइम्स, हिन्दू अनुवाद – मथुरा लाल शर्मा, पृ. 357.

72 कालीरंजन कानूनगो, शेरशाह एण्ड हिज टाइम्स, हिन्दू अनुवाद – मथुरा लाल शर्मा, पृ. 352–53.

73 इलियट एण्ड डाउसन, 3, पृ. 162.
आईने, 2, पृ. 62, कानूनगो, 370–79.

74 मोरलैण्ड, एग्रेरियन सिस्टम, पृ. 449.

75 आईने, 1, पृ. 294.

76 आईन–ए–अकबरी, 2, पृ. 58–67.

77 आईन–ए–अकबरी, 1, पृ. 297–247, वही, 2, पृ. 68–94.

78 अकबरनामा, 2, पृ. 111.

79 मोरलैण्ड, एग्रेरियन सिस्टम, पृ. 239–4.

80 आईन, 1, पृ. 347, आईन, 2, पृ. 94.

81 अकबरनामा, 2, पृ. 178–79, मंतुखव उत तबारिख, 2, पृ. 65.

82 मुंतखव उत तवारिख, 2, पृ. 65.

83 अकबरनामा, 2, पृ. 280.

84 अकबरनामा, पृ. 273.

85 आईने अकबरी, 1, पृ. 12–14.

86 अकबरनामा, 2, पृ. 197–98.
तवकात–ए–अकबरी, 2, पृ. 170.

87 आईने, 1, पृ. 17–19.

88 अकबरनामा, 2, पृ. 488.

89 अकबरनामा, 2, पृ. 270, आईने, 1, पृ. 347, आईने, 2, पृ. 94, कुरैशी, पृ. 108, इरफान हबीब, पृ. 203–4, मोरलैंड, पृ. 203.

90 तबकात–ए–अकबरी, 2, पृ. 296.
मसिर–ए–रहीमी, 1, पृ. 824–25.
तारीख–ए–अकबरशाही, पृ. 311.

91 अकबरनामा, 2, पृ. 117–18.
तारीख–ए–अकबरशाही, पृ. 317.
कैंब्रिज हिस्ट्री आफ इंडिया, 4, पृ. 109–10.
92 स्मिथ, अकबर दि ग्रेट मुगल, पृ. 166–67.
93 स्मिथ, अकबर दि ग्रेट मुगल, पृ. 177–78.
94 अकबरनामा, 3, पृ. 117–18.
95 बाम्बे गजेटियर (1869), सं. 1, भाग 1, पृ. 221–4, 265–9, वेली, गुजरात, पृ. 10–13.
96 आईन, 2, पृ. 58–62.
97 स्मिथ, अकबर दि ग्रेट मुगल, पृ. 401.
98 आईन, 1, पृ. 397.
99 इरफ़ान हबीब, दि ऐग्रेरियन सिस्टम ऑफ़ मुग़ल इण्डिया, पृ. 354.
100 आई.एच. कुरैशी, एडमिनिस्ट्रेशन आफ़ द मुग़ल इम्पायर, पृ. 169
101 लईक अहमद, मुगल कालीन भारत, पृ. 300.
102 कागदो की बही, वि.सं. 1827/1770 ई., नं. 3, पृ. 31 (बीकानेर रिकार्ड्स, राजस्थान राज्य अभिलेखागार, बीकानेर)
103 कागदों की बही, वि.सं. 1827/1770 ई., नं. 3, पृ. 31.
104 कागदों की बही, वि.सं. 1866/1809 ई., नं. 16, पृ. 18.
105 कागदों की बही, वि.सं. 1866/1809 ई., नं. 16, पृ. 18.
106 जी.एस.एल. देवड़ा, राजस्थान की प्रशासनिक व्यवस्था, पृ. 224.
107 बीकानेर रिकार्ड्स, खालसा गांव री बही, वि.सं., 1726/1669 ई. नं. 96; धान रे भोग री बही, वि.सं. 1736/1679 ई., नं. 57; भोग री बही, वि.सं. 1749, नं. 65
108 बीकानेर रिकार्ड्स, हबूब, बही, वि.सं. 1581, बस्ता नं०,1
109 जोधपुर रिकार्ड्स, सनद बही, नं. 63, पृ. 16; हथ बही नं. 4, पृ. 94–95; मुखर्जी रिपोर्ट , पृ. 9.
110 जोधपुर रिकार्ड्स, सनद बही, नं. 63, पृ. 16; हथ बही नं. 4, पृ. 95.
111 कालूराम शर्मा, मध्यकालीन राजस्थान का इतिहास, पृ. 411.
112 जोधपुर रिकार्ड्स, सनद बही, नं.. 63, पृ. 16, मुखर्जी रिपोर्ट, पृ. 910.
113 जयपुर रिकार्ड्स, फाइल नं. 1/2/3, जनरल, 1839 ई., जोधपुर स्टेट, एडमिनिस्ट्रेटिव रिपोर्ट, (1884–85) पृ. 60.
114 श्यामलदास, वीर विनोद, पृ. 180; लखमीचन्द, तवारीख जैसलमेर, पृ. 62.

115 कालू राम शर्मा, मध्यकालीन राजस्थान का इतिहास, पृ० 412.
116 श्यामलदास, वीर विनोद पृ. 150.
117 श्यामलदास, वीर विनोद पृ. 150.
118 जयपुर रिकार्ड्स, नक्शाजमा परगनात, वि.सं. 1937 (राजस्थान राज्य अभिलेखागार, बीकानेर)।
119 जोधपुर रिकार्ड्स, फाइल ए मीमो फार दि लैण्ड रेवेन्यू डिपार्टमेंट, सन् 1897 ई.।
120 जोधपुर रिकार्ड्स, दफ्तर हजूर बी. नं. 24 वि.सं. 1880.
121 मथुरा लाल शर्मा, कोटा राज्य का इतिहास, भाग–1, पृ. 759–60.
122 कालूराम शर्मा, मध्यकालीन राजस्थान का इतिहास, पृ. 414.
123 जोधपुर रिकार्ड्स, हवाला, फाइल नं 43, बस्ता नं. 34, जालौर हुकूमत।